सत्यांश

सौन्दर्य कहाँ नहीं है और कहाँ है? अर्थात् सब जगह है और कहीं नहीं है। यह विचार विचित्र लगता है, पर यही सच है, क्योंकि सौन्दर्य के लिए पूर्णता और सामंजस्य महत्त्वपूर्ण हैं; परंतु पूर्णता कहीं नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अंशतः तो सौन्दर्य सर्वत्र है, पर पूर्णतः कहीं नहीं। जहाँ सौन्दर्य पूर्ण रूप में नहीं है, वहाँ असुंदरता एक छोटे-बड़े हिस्से में अवश्य रहती है, परंतु असुन्दरता भी पूर्ण रूप से कहीं नहीं मिलेगी, इसलिए चर-अचर प्रत्येक वस्तु को सुंदर कहा गया है, सौन्दर्य की सत्ता सर्वत्र बतायी गई है। अतः प्रत्येक वस्तु सुंदर भी है और असुंदर भी। कहीं किसी बात की सुंदरता है तो कहीं किसी बात की असुन्दरता। कहीं सौन्दर्य की मात्रा अधिक है तो कहीं असुंदरता की मात्रा ज्यादा। इसीलिए ईश्वर को ही एक मात्र पूर्णता में परम सत्य, परम सुंदर, शाश्वत और सार्वभौम माना जाता है। जिन भाव-विचारों यथा सत्य, ज्ञान, प्रेम, कर्म आदि की विशेषताएँ शाश्वतता-सार्वभौमिकता और सुंदरता बताई गई हैं, उनमें भी ईश्वर की सत्ता दर्शायी गई है, यानी ईश्वर ही पूर्ण है, बाकी सब अपूर्ण। लेकिन इस ईश्वर के प्रति भी धार्मिक-सांप्रदायिक जो दृष्टिकोण है, उसमें दूसरे धर्म-संप्रदाय वाले अपने से इतर के धर्मवाले ईश्वर की सौन्दर्य पूर्णता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। जो किसी रूप में नास्तिक हैं, उनकी तो खैर बात ही और है।

जैसे सौन्दर्य को सार्वभौम, शाश्वत और अखण्ड्य माना गया है, वैसे ही असुंदरता का प्रवाह अविरल, अविराम और कालातीत है। यदि संसार की प्रत्येक वस्तु खूबसूरत है तो प्रत्येक वस्तु इसी मानदंड से असुंदर भी होगी। सुन्दरता तथा असुंदरता दोनों एक दूसरे के समकक्ष ही अस्तित्व में रह सकते हैं। इसलिए सुन्दरता-असुन्दरता दोनों का प्रवाह अखण्ड्य और अप्रतिहत रहा है, लेकिन स्थापनाएँ हमेशा सकारात्मक मूल्यों की होती हैं, चाहे व्यवहार-आचरण नकारात्मक मूल्यों वाला सौन्दर्यहीन-असुंदर ही क्यों न अधिक हो। इसलिए जब यह उदात्त विचार व्यक्त किया गया कि सब कुछ सुंदर है, तो उसके साथ यह नहीं कहा गया कि संसार की प्रत्येक वस्तु असुंदर भी है अथवा असुंदर ही है। परंतु मूल प्रश्न यह है कि सौन्दर्य-सुंदरता और असुन्दरता आखिर है क्या? किन निकषों पर हम किसी व्यक्ति, वस्तु या विचार को सुंदर-असुंदर कहते हैं? इस प्रकार देखने से यह मालूम पड़ता है कि जो अच्छा है, वह सुंदर लगता है और जो बुरा है, वह असुंदर लगता है। सदैव ऐसा ही होता है, कहना नासमझी होगा। आदत-स्वभाव के अनुरूप बुरी चीजें अच्छी लगती ही हैं।

किसी भी सत्ता या अवधारणा में जहाँ 'हित' दिखता है, वहाँ सौन्दर्य की सृष्टि होती है। हालाँकि हित के साथ सौन्दर्य देखना द्रष्टा की किन्हीं रूपों में स्वार्थ भावना का संकेत देता है और देखी जाने वाली वस्तु के सौन्दर्य की सत्ता पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है। यदि सौन्दर्य दृश्य वस्तु में है तो वह दिखना ही चाहिए, फिर 'हित' या 'सर्वहित' की बात कहाँ से आ गई? भारतीय और पाश्चात्य शास्त्र-ग्रंथ भी यही बताते हैं कि सौन्दर्य निष्प्रयोजन, निष्काम अर्थात् हित-अहित और स्वार्थ भावना से सर्वथा मुक्त होने पर ही अपनी पूर्णानुभूति करा पाता है। इसकी सत्ता व्यक्तिगत नहीं, सार्वभौम और अक्षुण्ण है। सुख-दुख, लाभ-हानि, प्रियता-अप्रियता से परे स्थितप्रज्ञ साक्षी दृष्टि से सौन्दर्य-पान सर्वोपरि है। परंतु जहाँ ऐसी उदात्त साक्षी दृष्टि होगी, वहाँ सौन्दर्य-सुन्दरता और असुन्दरता का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। द्रष्टा और उसकी दृष्टि सर्वोच्च होगी। हर वस्तु-व्यक्ति में तटस्थ रूप से सौन्दर्य ही दिखेगा, चाहे वह दुनियावी कसौटी पर असुंदर ही क्यों न हो। परंतु ऐसे द्रष्टा व दृष्टि का उदाहरण संसार में अपवादस्वरूप भी मिलना मुश्किल है। इसी समस्या के समाधान हेतु सौन्दर्य-बोध को व्यावहारिक दृष्टि से सर्वदा सर्वथा भिन्न कह दिया गया है। परंतु ऐसी दृष्टि का क्या लाभ, जो नैसर्गिक व्यवहार और अकृत्रिम स्वभाव की परिणति तक न पहुँच सके?

जहाँ 'हित' दिखता है, वहीं सौन्दर्य-बोध पनपता है, यही यथार्थ है। क्या इसे उलट कर कहा जा सकता है कि जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ हित उपलब्ध रहता ही है? विद्वानों ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सुंदर वस्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सुखद अवश्य होती है, किंतु प्रत्येक सुखकारी वस्तु सुंदर नहीं होती। उत्तम स्थिति भी यही मानी जा सकती है कि जहाँ सौन्दर्य हो, वहाँ सूक्ष्म-स्थूल, प्रत्यक्षतः-अप्रत्यक्षतः कुछ-न-कुछ 'हित-साधन' हो ही जाए। यदि ऐसा नहीं तो सौन्दर्य किस काम का, काहे का? जहाँ वास्तव में या भुलावे में भी कुछ 'हित' या 'कल्याण' या 'मंगल' हो जाता है, वहाँ आदमी सौन्दर्य देख ही लेता है। ऐसी स्वार्थ भावना वाली कार्य-दृष्टि कई बार अनिष्टकारी भी

साबित होती है और अंततः आत्मिक अहित भी कर देती है। आज की दुनिया का सारा कार्य-व्यापार इसी रूप में चल रहा है, जहाँ सतही लाभ के चक्कर में आदमी अपना व्यापक अहित कर रहा है। वर्तमान का जीवन व्यवहार इसी धुरी पर चल रहा है, इससे संभवतः कोई परे नहीं...।

जैसा कि हमने देखा कि जहाँ अपना हित-साधन न हो, वहाँ सौन्दर्यानुभूति मुश्किल होती है। जन-सामान्य के जीवन की सच्चाई यही है और बुद्धिजीवी विद्वानों की भी। व्यक्ति, वस्तु या विचार को या तो सापेक्षता अथवा अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप देखा जाता है या फिर नकारात्मक रूप में। सामान्यतः निरपेक्ष भाव से नहीं देखा जाता और सापेक्षता-निरपेक्षता से ऊपर उठकर देखने की दृष्टि कहाँ उपलब्ध है? इसीलिए कहीं किसी को सौन्दर्य दिखता है, तो उसी में किसी को असुंदरता दिखाई देती है। वस्तु या विचार एक ही है, पर द्रष्टा-दृष्टि संस्कार के कारण उसका रूप अलग-अलग और विपरीत भी लगता है। यहाँ दृष्टि प्रधान हो जाती है और एक का औचित्य दूसरे के लिए अनौचित्य साबित होता है। तुलसी की क्षेपक पंक्ति 'पूजहूँ ब्राह्मण गुणशील हीना, शूद्र न गुण गन ग्यान प्रवीना' को पढ़ते हुए एक दलित को वहीं सौन्दर्य बोध नहीं मिलता जो गैर दलितों को मिलता है। मार्क्सवादी या दलित या स्त्री सौन्दर्यशास्त्र में मार्क्सवादियों, दलितों, स्त्रियों का जो सौंदर्यबोध है, वही गैर-मार्क्सवादियों, गैर-दलितों, गैर-स्त्रियों को उपलब्ध नहीं होता। धार्मिक ग्रंथ जितना आस्थावानों को आनन्दानुभूत करते हैं, उतना नास्तिकों को नहीं। वस्तु एक ही है, पर दृष्टि और संस्कार के कारण धारक की सौन्दर्यानुभूति पृथक्-पृथक है।

यदि यह मान भी लिया जाए कि सौन्दर्य या सुन्दरता सार्वभौम है और जो वास्तव में सुंदर है, वह सब के लिए सुंदर होता है, तब भी इस बात को पूर्णतः मान लेना असंभव है कि सौन्दर्य सदैव सुखद ही होता है। चाहे संस्कार, विचार, व्यवहार कितने ही निरपेक्ष, तटस्थ और स्वार्थ कामना से रहित ही क्यों हों। अगर आपकी ओर से नहीं, तो सामने के सौन्दर्य वाली वस्तुओं, भावनाओं, व्यक्तियों की सापेक्षता आपके प्रति होती है, अपेक्षाएँ और कुछ माँगें होती हैं और वहाँ निरपेक्षता-तटस्थता एक दोष सिद्ध होगी, सौन्दयानुभूति में बाधक होगी, क्योंकि जैसे द्रष्टा दृश्य है, वैसे ही दृश्य भी द्रष्टा है और उसके सौन्दर्य-दर्शन की अपनी अपेक्षाएँ हैं जो प्रत्यक्षतः-परोक्षतः आपसे भी हैं, हर देखने वालों से हैं। जैसे आप हित चाहते हैं, वैसे ही वे चाहे अचर ही हों, अपना सौन्दर्य-हित तो स्थूलतः-सूक्ष्मतः चाहते ही हैं और यहीं आपकी कुछ जिम्मेवारी बन जाती है, उस द्रष्टा के प्रति जो आपको देख रहा है और जिसे आप देख रहे हैं।

'सुंदर' सदैव सुखद नहीं होता, अहितकर भी होता है। सुंदर चीजों का अहित असुंदर चीजों के अहित से अधिक मारक और हृदय-विदारक होता है। यह ऐसे ही होगा जैसे बारिस में नहाकर लुफ्त उठाते व्यक्ति पर अचानक बिजली गिर जाए या पेड़ की शीतल छाँव में मंद-मंद वायु के झोकों से रससिक्त आदमी को लू की लहर लग जाए। ऐसा होता ही रहता है। शत्रु की शत्रुता से मित्र की शत्रुता अधिक घातक-मारक होती है।

जरा सोचें कि महाभारत काल में द्रौपदी के स्वयंवर में कितने राजा-महाराजा आए थे। क्यों आए थे? इसलिए आए थे, क्योंकि सब द्रौपदी के अनुपम सौन्दर्य से परिचित थे और उस पर मुग्ध थे। परंतु कोई लक्ष्य-भेद के लिए निर्धारित मछली की आँख में निशाना न लगा पाया। ऐसी स्थिति में द्रौपदी सहित सब लोग बेहद निराशा में थे, तभी दानवीर कर्ण आगे बढ़ा। उसे अचूक निशाना लगाते देख कर कृष्ण के इशारे पर द्रौपदी ने 'मैं शूद्र पुत्र का वरण नहीं करूँगी', कहकर उसे रोका और भरी सभा में अपमानित किया। द्रौपदी ने ऐसी कटूक्ति का प्रयोग तब किया, जब स्वयंवर में वर मिलने की संभावना अति क्षीण दिखाई दे रही थी। कर्ण को शूद्र पुत्र मान लिया गया था, पर उसके सौन्दर्य, रूप-गुण और पराक्रम से सब भलीभाँति परिचित थे। इसीलिए उसके शूद्र होने पर अविश्वास भी करते थे। इस 'अविश्वास' से जातीय अहं की तुष्टि हो जाती थी और शूद्र होने पर 'विश्वास' भी करते थे, क्योंकि इससे कर्ण के व्यक्तित्व वाले सौन्दर्य को नकार कर उसे उपेक्षित-अवहेलित करने का बढ़िया मौका मिल जाता था। द्रौपदी की लावण्यमयी सुंदरता के भीतर से निकले उक्त दुर्वचन का कर्ण पर क्या प्रभाव पड़ा? तब भी क्या द्रौपदी कर्ण के लिए उतनी ही 'सुंदर' लगती रही होगी, जितनी पहले थी?

कर्ण उन महारथियों में से नहीं था, जो द्रौपदी के रूप-गुण से मोहित होकर लार टपकाते फिरते थे। उसे प्राप्त करने के लिए छल-छद्म सहित अनेक घृणित-अनैतिक तरीके अपनाए। अपनी बेइज्जती कराई और अपनी जान से हाथ धो बैठे। दुर्योधन, जयद्रथ और कीचक ऐसे ही महावीर थे। कर्ण ने द्रौपदी को प्राप्त करने का जो प्रयास किया था, वह बिल्कुल नैतिक था और ज्यादा सही यह है कि वह आपद्धर्म का निर्वाह ही अधिक था। इसे सूक्ष्मता से देखा जाए तो सौन्दर्य बोध की कई परतें उघड़ती हैं, जहाँ सौन्दर्य के शास्त्रीय-किताबी गुणगान से अधिक व्यावहारिक दृष्टि पनपती है। उसके बाद से द्रौपदी कर्ण के लिए सौन्दर्याभिमानिनी हो गई। मौका मिलते ही कर्ण ने भी अपनी पूरी टीस उड़ेल दी, 'जिस स्त्री के पाँच-पाँच पति हों, वह वेश्या सदृश है, उसका मान क्या, अपमान क्या? भरी सभा में उसे नग्न भी नचाया जाए, तब भी उसका अपमान नहीं होगा।' कर्ण और द्रौपदी दोनों ही अद्भुत व्यक्तित्व के थे और इस रूप में अप्रतिम

सौन्दर्यशाली भी, फिर भी दोनों का सौन्दर्य एक-दूसरे को आकर्षित करने की बजाय विपरीत प्रभाव डाल गया। यह प्रश्न लाजिमी है कि यहाँ किसके सौन्दर्य में कहाँ खोंट था कि ऐसा हुआ। सौन्दर्य सुखद क्यों नहीं रहा? इसलिए क्योंकि सौन्दर्य की पूर्णता नहीं थी। व्यक्तित्व, शारीरिक सौष्ठव, मानसिकता, दिव्यता और पराक्रम के भीतर कुछ असुंदर चीज थी, जो पूरे सौन्दर्य की आभा को फीका कर गई। वाणी की असुंदरता ने ऐसी स्थिति पैदा की जो विशुद्ध सार्वजनिक थी, नितांत निजी को सार्वजनिक बनाने का कुप्रचारित प्रयास यह न था। यह कहने और सुनने के लिए ही कही गई थी। इसीलिए किसी का वैभव, संपत्ति, पद, राजनीति, संस्कृति, धर्म जब हमारा अहित करते हैं तो उनमें सौन्दर्य देखना मुश्किल होता है। भ्रष्टाचार, अपराध, चोरी, दुष्टता आदि की तो बात ही अलग है। हालाँकि इनमें भी सौन्दर्यानुभूत होने वाले होते हैं, तभी तो ऐसा करते हैं। भ्रष्टाचारी को अपने भ्रष्ट आचरण से जो धन-काम सुख मिलता है, बलात्कारी को जो कामना-तृप्ति होती है, वहाँ भी वह सौन्दर्य देखता है, उसे किसी रूप में अपने काम को अंजाम देने में 'कर्म का सौन्दर्य' उपलब्ध होता है। समाज में यह परम्परा प्रायः हर जगह हर स्तर पर विद्यमान है। यही सौन्दर्य के साथ सबसे बड़ा भितरघात भी है।

चूँकि सौन्दर्य सर्वत्र है, इसलिए ज्ञान परम्परा और लोक परम्परा में सामान्यतः असुंदर की श्रेणी में रखी गई चीजों में भी सौन्दर्य है और कई बार उतना ही, जितना सुंदर मानी जाने वाली वस्तुओं व विचारों में है। आम तौर पर हँसना अच्छा यानी सुंदर और रोना बुरा यानी असुंदर माना जाता है, अमीरी सुंदर और गरीबी असुंदर मानी जाती है, अहिंसा सुंदर और हिंसा असुंदर मानी जाती है। लेकिन वास्तविकता यह है कि किसी का गाना अच्छा नहीं लगता, पर किसी के आँसू भी सुंदर लगते हैं। कहीं अहिंसा कायरता-काहिलता-अमानवीयता और ब्लैकमेलिंग वाली लगती है तो कहीं हिंसा मनुष्यत्व का रक्षक तथा कानून की हिफाजत करने वाली साबित होती है। रामलीलाओं में रावण की हँसी अच्छी नहीं लगती, पर राम का रुदन अच्छा लगता है, ऐसा क्यों होता है और यहाँ सुंदरता का मानक क्या है? उत्तर सीधा है कि प्राकृतिक-नैसर्गिक और स्वाभाविक कार्य-कलाप सदैव सुन्दर होते हैं। बनावटी हँसी अच्छी नहीं लगती, पर स्वाभाविक चिंतित चेहरा अच्छा लगता है। कृत्रिमता स्वाभाविकता की विनाशिका होती है, 'स्वाभाविकता' में सौन्दर्य है, लेकिन यह स्वाभाविकता भी असुंदर, उद्दण्ड, अटपटी हो सकती है और बहुधा होती भी है। आजकल वाणी का सौन्दर्य हो या लेखन का, अथवा शरीर का सौन्दर्य हो या विचार का, राजनीति का हो या धर्म का, उसका मूलाधार कृत्रिम बनावटी ही अधिक है। कृत्रिमता आज की सौन्दर्य-चेतना का जरूरी उपक्रम है, इसलिए वास्तविक सौन्दर्य सिरे से गायब है, चेतना को झंकृत कर आह्लादित करनेवाला सौन्दर्य मुश्किल में है। लेकिन इस कृत्रिमता का महत्त्व भी है। वर्तमान 'कॉस्मेटिक क्रांति' का जमाना है, बाल उगाए जा सकते हैं, नाक बड़ी की जा सकती है, ऊँचाई बढ़ाई जा सकती है, लेकिन इस कृत्रिमता का कुछ महत्त्व भी तभी है, जब वे स्वाभाविकता, नैसर्गिकता की दिशा में हों। इसीलिए कहीं रसोई घर को देखकर खाने का मन नहीं करता, तो कहीं बाथरूम में बैठकर अखबार पढ़ने का आनंद लिया जा सकता है।

सौन्दर्य के बारे में बहुत कुछ जान कर भी ऐसा लगता है कि सौन्दर्य में ऐसा कुछ है जो सबको अच्छा लगता है, पर व्यक्त नहीं होता। यह सुख, संतोष और आनंद प्रदान करता है। इसमें एक ऐसी गहरी तृप्ति होती है, जिसका एहसास तो किया जा सकता है; परंतु व्यक्त नहीं किया जा सकता। चरम सौन्दर्य की अनुभूति में मन की विकृतियाँ, क्लेश, तनाव सब मिट जाते हैं और सात्त्विक भावों का उदय होता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि वस्तु के सौन्दर्य के प्रति व्यक्ति भावप्रवण हो। अमूमन हम सौन्दर्य को भी रूढ़ियों, परम्पराओं, सामाजिक मान्यताओं और लोक परिपाटियों के परिप्रेक्ष्य में ही देखते हैं। पूर्वाग्रह सौन्दर्य-दर्शन में अवरोध उत्पन्न करता है। कई बार पूर्व धारणाओं के कारण हमें वस्तु के वास्तविक स्वरूप का सही बोध नहीं होता। इसलिए सौन्दर्य अनुभूति व अभिव्यक्ति के लिए जितना भावप्रवण होना अनिवार्य है, उतना ही पूर्वाग्रह मुक्त होना भी जरूरी है।

सौन्दर्य केवल बाह्य रूप में प्रकट नहीं होता, वरन् आंतरिक रूप में अदृश्य भी रहता है। यही चेतना का सौन्दर्य है, मन-मानस की खूबसूरती, हृदय की निश्छलता, निष्कपटता का प्रभाव बाहरी स्तर पर दृष्टिगोचर होता है, या यों कहें कि बाहरी सौन्दर्य की पूर्णावस्था के लिए आंतरिक सौन्दर्य का होना आवश्यक है, अर्थात् अंदर की खूबसूरती ही बाहरी सुन्दरता का रूप धारण करती है। भीतरी सुंदरता के अभाव में व्यक्ति बाहर से कितना ही 'सुंदर' क्यों न हो, वह असुंदर ही माना जाएगा। यह सही है कि बाह्य सुंदरता को देखकर ही हम किसी की ओर आकृष्ट होते हैं। जब कोई बाहर से आकर्षित करता है, तभी हम उसके आंतरिक सौंदर्य को देखने की ओर आगे बढ़ते हैं, यानी आंतरिक सौन्दर्य तक मार्ग प्रशस्त करने की राह साधारणतः बाह्य सौन्दर्य से होकर गुजरती है।

अंदर का खुशी-आनंद बाहरी भावों, शरीर-भाषा और

मानसिक-शारीरिक सौन्दर्य पर जो प्रभाव डालता है, उससे एक विशेष प्रकार की दिव्यता व भव्यता मिलती है और इसके लिए कोई खास समय, पोशाक, रहन-सहन की जरूरत नहीं होती। सामान्यतः माना जाता है कि सौन्दर्य यौवन की विशेषता है; परंतु सौन्दर्य बालक का तो होता ही है, बूढ़े का भी होता है। बुढ़ापा का भी अपना सौन्दर्य है। सौन्दर्य सब जगह है, शारीरिक रूप-रंग, सौष्ठव, विचार, भाषा और जवानी तक ही सीमित नहीं है और जरूरी नहीं कि यहाँ हो ही। अमूमन ऐसा भी होता है कि जवानी के साथ जिस उमंग-उत्साह, दिशा-दृष्टि की जरूरत होती है, वह नौजवानों में गायब रहता है, दूसरी ओर कहीं जेपी जैसा बुढ़ापा और उसका अनुभव भी सुंदर होता है। दुष्यंत कुमार के शब्दों में,

एक बूढ़ा आदमी है, मुल्क में या यों कहो
इस अँधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।

जहाँ जो जिस अवस्था में है, उसी अवस्था की चरम स्थिति सौन्दर्य है। इसीलिए यदि बच्चे के जन्म लेने की खुशी व आनंद का सौन्दर्य है, तो मृत्यु का भी अपना सौन्दर्य है, तभी मंसूर 'मरने ही ते पाइए पूरन परमानंद' कहते हैं, तो महादेवी वर्मा ने 'आज मरण का दूत तुम्हें छू मेरा पाहुन प्राण बन गया' कहकर मृत्यु के सौन्दर्य को व्यक्त किया है।

सौन्दर्य के लिए समानुपातिक सामंजस्य जरूरी है। यही उचित संतुलन का भाव सौन्दर्य को परिपूर्ण बनाता है। यह परिपूर्णता ऐसी होती है कि व्यक्ति कभी इससे अघाता नहीं, तृप्त नहीं होता। लेकिन ऐसा वहाँ भी होता है, जहाँ कुछ कामनाएँ होती हैं। जैसे काम-वासना का चाहे जितना भोग किया जाए, उससे तृप्ति नहीं मिलती, बल्कि प्यास और बढ़ती है, ठीक उसी प्रकार सौन्दर्य का भी हाल है। यद्यपि फ्रायड ने सौन्दर्य का सीधा संदर्भ कामेच्छा से माना है, तथापि सौन्दर्य यहीं तक ही सीमित नहीं है। यह एक विराट व उदात्त भाव है जिसमें लौकिकता और ऐन्द्रियता भी है और अलौकिक दिव्यता भी। जिस प्रकार विशुद्ध भोग्य व्यक्ति-वस्तु से तृप्ति की पूर्णता नहीं होती, उसी प्रकार दिव्य भावों से भी पूर्ण परितृप्ति प्राप्त कर आदमी कभी ऊबता-अघाता नहीं। जो अघा कर संतुष्ट हो जाता है, वह इस विशेष रस-आनंद को नहीं जान पाता, 'रामचरित ने सुनत अघाहीं, रस विशेष जाना तिन नाहिं।' अर्थात् भक्ति जैसे उदात्त भाव में जो सौन्दर्यानुभूति होती है, उसमें बारंबारता का कोई मूल्य नहीं। यही कारण है कि रामकथा सामान्यतः वही है, जो हजारों हजार साल से प्रचलित है, जिसे सब लोग जानते हैं, फिर भी उसी राम कथा को सुनने-कहने वालों की कथा चलती रहती है और लाखों की भीड़ उसी रामकथा में नये रस का पान करती है। यही भक्ति की दीप्ति का सौन्दर्य है। इसलिए जोर देकर बताया गया है कि जो पल-पल नएपन का, ताजगी का आभास कराए, वही सौन्दर्य है, दर्शन की प्यास कभी बुझे नहीं, 'अँखिया हरि दर्शन की प्यासी।' हिन्दी कवि घनानंद भी कहते हैं, 'रावरे रूप की रीति अनूप नयौ-नयौ लागत जेते निहारिये' अर्थात् ईश्वर के रूप की भी रीति-नीति अद्भुत और विचित्र है, जितना देखा-सुना जाता है, उतना ही सौन्दर्य के नएपन के साथ दिखता है और आँखें तृप्त नहीं होतीं और कान तृप्त नहीं होते। जयशंकर प्रसाद की नजर में 'प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल' यानी ताजगी ही सौन्दर्य की असली निशानी है। इसलिए किसी भी वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति, विचार, भाव, भाषा में सौन्दर्य सृजन के लिए ताजगी का होना और इसके लिए नए प्रयोगों का होना आवश्यक है, अन्यथा एकरसता उसके सौन्दर्य को खा जाएगी। इसीलिए सौन्दर्य की एक विशेषता विविधता में समन्विति भी है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी का भाषण भी इसलिए बढ़िया होता रहा, क्योंकि उसमें सभी रसों का परिपाक, हास्य-व्यंग्य से लेकर गंभीर विचार तक होता था। यही सर्वांगता सौन्दर्य की सीमा बढ़ा कर पूर्णता की ओर ले जाने में सक्षम होती है।

सौन्दर्य का सर्वत्र दर्शन समदर्शी ही कर सकता है। पर उसे भी सुंदरता की मात्रा के आधार पर फर्क करना ही पड़ता है। जैसे पूर्ण और अंतिम सत्य का पता पाना दुष्कर है, वैसे ही सौन्दर्य की चरम व पूर्ण सत्ता की कल्पना मुश्किल है। कहीं शारीरिक सौन्दर्य है, तो कहीं चरित्र का सौन्दर्य, कहीं ज्ञान का सौन्दर्य है तो कहीं कर्म का सौन्दर्य, कहीं पद-प्रतिष्ठा का सौन्दर्य है तो कहीं धन-वैभव का, पर सब कुछ एक जगह नहीं है और जहाँ एक भी है वहाँ क्या वह वास्तविक सौन्दर्य रूप में है? क्या 'ज्ञानी' के पास वास्तविक रूप में ज्ञान का सौन्दर्य है और 'कार्मिक' के पास वास्तव में कर्म का सौन्दर्य? सामान्यतः उत्तर नहीं में है। सौन्दर्य के लिए ज्ञान, कर्म, शरीर के अलग-अलग मानक रहे हैं। एक जगह जो सौन्दर्य है, वही समय, परिस्थिति, देश के अनुसार दूसरी जगह सुंदर नहीं ठहरता। मान लीजिए किसी के पास अद्भुत वक्तृत्व कला है, पर व्यवहार विकृत, तो उसकी वाणी भी व्यवहार के अभाव में असुंदर ही होगी। इसी प्रकार लेखन अच्छा हो, पर व्यवहार विपरीत, तो इन्हें लेखन की सुंदरता और व्यवहार की असुंदरता कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। अंततः व्यावहारिक विपरीतता के कारण यह लेखन भी सौन्दर्यहीन ही माना जाएगा और जहाँ ऐसी किसी भी प्रकार की सौन्दर्यहीनता होगी, वहाँ उसका प्रभाव नगण्य होगा।